Pradeep Raj P. “ Search for the cultural identity of India in contemporary Hindi poetry (With special reference to 1980-2000)” Thesis. Department of Hindi, University of Calicut, 2017

चौथा अध्याय

समकालीन कविता में भारत की सांस्कृतिक अस्मिता – सन् 1980 से 2000 तक

कविता संघर्ष का दूसरा नाम है। वह समाज के पीड़ित व शोषित जनता की आवाज़ है। बाज़ार की चकाचौंध में ज़मीनी सच्चाईयों से हम कोसों दूर जा रहे हैं। आदमी में कविता और कविता का आदमी कहीं लापता है। कविता मानवीय यथार्थ और नियति की अभिव्यक्ति का सबसे प्राचीन माध्यम है। वह हाशिए पर खड़े आदमी का जीवन यथार्थ है। ''कविता उस अंतिम मनुष्य की रक्षा के लिए चिंतित होती है जो भीषण समय के चक्रव्यूह में फॅस गया है। ऐसे समाज में जहॉ 'समय का रथ ही घिर गया हो' वह आह्वान की तरह उठने के लिए प्रस्तुत रहती है।''[1] समकालीन कविता, विशेषकर 1980 के बाद की कविता अपने साथ सृजनात्मक मौलिकता को ले आई है। इसने कविता की परंपरा में एक नया अर्थ जोड़ दिया है। विषयवस्तु, प्रस्तुतीकरण शैली, यथार्थ को देखने की रीति आदि में एक नयापन देखने को मिलता है। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप एक नई बाज़ार व्यवस्था का उद्भव हुआ है जो हमारे सामने छद्म यथार्थ को प्रस्तुत करता है। बिल्कुल उस मारीच की तरह जिसने राम को छला था और आज वह कई रूपों में जनता को छल रही है।

सन् 1980 और 2000 के बीच कविताऍ उस परिवर्तन से गुज़र रही थीं जहॉ एक ओर भारत में भूमण्डलीकरण का प्रभाव गहराता जा रहा था तो दूसरी ओर भ्रष्ट नेता एवं सरकार की जनविरोधी नीतियॉ भारतीय समाज को कई हिस्सों में बॉट रही थीं। जनता में मोहभंग की स्थिति थी। जनता मूल्यों को अर्थहीन समझने लगे थे। ऐसी परिस्थिति में समकालीन कवियों ने भारत की सांस्कृतिक तत्वों को अपनी कविताओं में शामिल किया; ऐसे तत्व जो सकारात्मक हैं और लोक जीवन के निकट

हैं। केवल शहरी मध्यवर्ग के अन्तर्मन की कुंठा का चित्रण न करके कवियों ने गॉव की तरफ रुख लिया। सत्ता के शोषण तंत्र में फंसकर आत्महत्या कर रहे किसानों की व्यथा कथा अपनी कविताओं के ज़रिए प्रस्तुत किया। अपनी कविता में लोक भाषा एवं शब्दों का प्रयोग कर इन कवियों ने भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को सजीव रखा। इन कवियों ने स्मृति के सहारे बचपन में छूट गए प्रकृति एवं मानवीय संबंधों पर ज़ोर दिया है। कवि कभी पुराने मित्रों के बारे में, तो कभी पुरखों के घर–आंगन की याद करते हैं। कवि मंगलेश डबराल कहते हैं –

''बहुत बूढ़े होने पर भी आप अगर एक भूले–भटके बच्चे की तरह
घर जाये ंतो वहॉ पिता

मॉ या अन्य स्वजन होंगे जो ठीक बचपन में आपको पहचान लेंगे।

- .....

एक पेड़ की तरह जाना बेहतर होगा। एक बड़ा पेड़ आपको अपने
भीतर छिपा लेगा।''[2]

भारत की संस्कृति की एक विशेषता यह है कि वह मनुष्य और प्रकृति के रागात्मक संबंध को महत्व देती है। वह इंसान और प्रकृति को एक दूसरे से जुड़े हुए मानती है। अतः समकालीन कविता ने इंसान और प्रकृति के अंतःसंबंध को महत्व दिया है। समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में प्रतीक, मिथक, फैंटसी, उपमा आदि का प्रयोग इंसान की विभिन्न परिस्थितियों को चित्रित करने के लिए किया है। समकालीन

कविता मानव और प्रकृति को अभिन्न अंग के रूप में देखता है। कवि मदन कश्यप कहते हैं–

''किसी सूर्यपुत्र की तरह

कवच के साथ ही जन्म नहीं लेती हैं

सीपियॉ

.....

बस कभी–कभी ही

उनकी नन्हीं सी जीवन यात्रा में

पैदा होता है कोई व्यतिक्रम

जब ऑखों–सी कोमल उनकी देह में

घुस आते हैं ठोस कण

तब सागर से भी गहरी पीड़ा

नदी की अजस्र धारा–सी

निरंतर वेदना झेलती हुई

अपने जीवन रस से उन्हें पालती हैं

सीपियॉ।''[3]

इस काल की कविताओं में व्यक्ति के निजी अनुभवों का बहुत बारीकी से चित्रण हुआ है। इन कविताओं में प्रेम प्रगाढ़, सघन, मार्मिक

और एक विकल्प के रूप में व्यक्त होता है। सन् 1980 के बाद की कविताओं के केन्द्र में मुख्यतः आदमी है। यह कविता उस जगह ठहरती है जहाँ निष्करुण व्यवस्था ने मूल्यवान मानव–मूल्यों, रागात्मक संबंधों और सांस्कृतिक परंपराओं को कमज़ोर किया है, चाहे वह घर, गॉव, शहर, महानगर या समूचा देश हो। असुरक्षित होते जा रहे जीवन के साथ कवि की गहरी सहानुभूति और अपनापा है। कवि सतत् क्रियाशील हैं कि जीवन से खालीपन और असुरक्षा को, कम ही सही, बरख़ास्त करने में उसकी कविता भूमिका निभा सके। कवि पंकज चतुर्वेदी कहते हैं

''एक रोचक अजायबघर में कैद होकर

दिखते हुए हैं हम पागल चेहरे

अपनी अकारण हँसी

और बेतरतीब रुलाई के साथ

एक अनोखे संग्रहालय में

तब्दील होता हुआ है

हमारा अस्तित्व

अपनी समृद्ध परंपरा की गरिमा

और संशयग्रस्त प्रासंगिकता की शोभा के साथ।''[4]

समकालीन कविता लोक, पौराणिक, धार्मिक एवं जातीय मिथकों का प्रयोग करती है। यह जनजातीय संस्कारों को भी अपनी कविता में

स्थान देती है। यह कविता जनजातीय जीवन का बहुत गहराई से चित्रण करती है। लोकनिरूपण और वैज्ञानिक चेतना इसके मुख्य घटक हैं। ये कवि स्मृति, स्वप्न, अंधकार, नींद, छाया व फैंटसी का सहारा लेकर काव्य करते हैं। यह समाज के हाशिएकृत वर्गों के दुख दर्द को आवाज देती है। उनके स्वप्नों, उनके उम्मीदों को साकार करने हेतु उनके साथ कवि संघर्ष की राह पर चलने के लिए सतत् तैयार हैं। भारत की सांस्कृतिक विरासत इन्हीं तत्वों से जीवित है। अतः समकालीन कवि इन्हें कविताई प्रतिरोध की तरह मूल्यहीनता के विरुद्ध प्रयुक्त करते हैं। इसके साथ–साथ इस काल के कवियों ने विस्थापन की समस्या से ग्रस्त लोगों की संवेदना का चित्रण किया है। देश के विकास के नाम पर बड़ी संख्या में लोगों को विस्थापन की समस्या झेलनी पड़ी है। इससे भारतीय ग्रामीण जीवन पर भयानक असर पड़ा है। इन कवियों ने इस खतरनाक स्थिति को तथा किसानों के मानसिक द्वन्द्व का चित्रण किया है। कवि विनोद कुमार शुक्ल कहते हैं–

''कुएँ के तल की कुँआसी इच्छा

उसकी अंदरूनी गहरी

बारूद से तड़कने की

परन्तु अपने ही निकले हुए पत्थरों और मिट्टी से भरता हुआ कुआँ

कुआँ न होने की तरफ लौट रहा है

अब यह पलायन था कुएँ का

गॉव पहले उज़ाड़ हो चुका था।''[5]

इन कवियों में एक उम्दा बात है – इनके सपने और इनमें जीवन–जगत के लिए प्रबल आस्था। इन दोनों चीज़ों ने इनकी कविताओं को पहचान देने में मदद की है। निरी वैयक्तिकता के घटाटोप से बाहर वे वृहत्तर मानव समुदाय की हितरक्षा में है। समकालीन कविता जातिवाद, सांप्रदायिकता, हिंसा एवं अमानवीयता के विरुद्ध एक प्रतिरोध खड़ा करती है क्योंकि भारत की संस्कृति का वास्तविक स्वरूप लोकतांत्रिक है। वह अहिंसा एवं सहअस्तित्व का संदेश देती है। निर्बल लोगों के उत्थान की बात करती है। परन्तु आधुनिक उपभोक्तावादी समाज में इंसान को महज़ वस्तु के रूप में देखा जाता है। सांस्कृतिक उन्नति के बजाए केवल आर्थिक उन्नति देखी जाती है। इंसान एवं प्रकृति दोनों आज बाज़ार में महज़ विक्रय की वस्तु रह गई है। इस अमानवीयता के विरुद्ध समकालीन कविता मानवीयता, अहिंसा आदि का संदेश प्रदान करती है।

4.1 **ग्रामीण जीवन**

भारत की संस्कृति उसके गॉवों में बसी है। वहीं से भारतीय मूल्यों का आविर्भाव हुआ है। अतः समकालीन कवियों ने ग्रामीण परिवेश का चित्रण कर वहॉ की मूल्यवान एवं विकासशील विरासत को अपनी कविताओं के ज़रिए बचाने का प्रयास किया है। समकालीन कविता में ग्रामीण जीवन, किसान परिवार एवं ग्रामीण प्रकृति का चित्रण हमें प्राप्त होता है। लोक जीवन की सहजता व सच्चाई हमें इसमें प्राप्त होती है। ग्रामीण परिवेश का चित्रण मनुष्य के एक अभिन्न सहचर और अनिवार्य

उपागम के रूप में की गई है। ग्रामीण जीवन मानवीय संबंधों और मूल्यों को महत्व देती है। बाज़ारवादी संस्कृति ने मानवीय संवेदना को नष्ट किया है। उसने व्यक्ति को स्वार्थ की खाई में ढ़केल दिया है। इनके खिलाफ़ समकालीन कवियों ने ग्रामीण जीवन में व्याप्त भाईचारा, ममता, दोस्ती, प्रेम आदि नष्ट हो रहे मूल्यों को शब्दबद्ध कर मानवीयता को बचाने का प्रयास किया है। कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं–

''मॉ को कैसे पता चलेगा

इतने बरसों बाद

हम फिर उसके घर आये हैं–

कुछ पल उसको अचरज होगा,

चेहरे पर की धूल–कलुष से विभ्रम भी–

फिर पहचानेगी

हर्ष–विषाद में डूबेगी–उतरायेगी।''[6]

गॉव में छूटे बचपन की याद कवि अशोक वाजपेयी करते हैं–

''चिड़ियॉ आयेंगी

हमारा बचपन

धूप की तरह अपने पंखों पर

लिए हुए।''[7]

गॉव के त्योहार ग्रामीण जीवन का एक अभिन्न अंग है। यह वैयक्तिक स्वार्थ के खिलाफ़ सामाजिकता का व समभाव का रूप है। यहॉ लोग हॅसी–खुशी एक दूसरे से मिलते हैं, सुख–दुख बॉटते हैं। कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं–

''लोग होंगे

रंगीन और उजाले कपड़ों में मढ़े हुए

सस्ती चीज़ों से अपने खुशियॉ मनाते

लोग होंगे

.....

चखचख करती औरतें होंगी

और खो–खो जाते बच्चे

.....

चीरती–चिल्लाती अनगिनत आवाज़ें होंगी

और मेरे होठों पर जागेगा

एक प्यारा–सा हल्का संगीत।''[8]

4.2 **प्रकृति एवं पर्यावरण**

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण एक मुख्य घटक है। उसका मानवीय जीवन से एक गहरा संबंध है। यह संस्कृति मानव को प्रकृति का एक

अभिन्न अंग के रूप में देखता है। भारतीय संस्कृति की इसी विशेषता को समकालीन कवियों ने अपनी कविता के ज़रिए दर्शाया है। समकालीन कवियों ने इंसान द्वारा पीछे छोड़ गए उनके आत्मिक संबंधों की रागात्मकता को शब्दों में बांधकर, देहाती जीवन और वहॉ के पर्यावरण के विरल दृश्यों को पाठकों के सामने लाते हैं जिसमें वह मानवीय संबंधों के विभिन्न तलों का चित्रण कर तथा अपने परिवेश से उसकी नैसर्गिक एकरूपता को दिखाते हैं। समकालीन कविता मानव और प्रकृति के संबंधों का पोषण कर इंसान को अपने मूल से जुड़े रहने और अपनी संस्कृति की सही पहचान करने में उसकी सहायता करती है। समकालीन कविता की प्रकृति मनुष्य के क्रियाकलापों में भी है और उससे स्वतंत्र भी है।

इन कविताओं में मनुष्य और प्रकृति के सह अस्तित्व देख सकते हैं। सकमालीन कविता प्रकृति को मनुष्य के भावानुरूप ढालते हैं। ''कहीं मनुष्य प्रकृति के अनुसार ढलता है और कहीं उसे अपने अनुसार ढालता है। मनुष्य और प्रकृति का यह द्वन्द्वात्मक संबंध इस कविता में नए सिरे से जीवंतता ग्रहण करता है। प्रकृति के प्रति शोषणवादी – आधुनिकतावादी पाश्चात्य नज़रिए के विपरीत, उसके साथ साहचर्य और सह अस्तित्व का सदियों पुराना हमारा भारतीय दृष्टिकोण इस कविता में एक नई ताज़गी के साथ निबद्ध है।''[9] बाज़ारवादी संस्कृति ने न सिर्फ मनुष्य को परिवार, समाज से दूर किया है बल्कि उसे प्रकृति से भी कोसों दूर ले गई है। साथ ही प्रकृति का अंधाधुंध शोषण हो रहा है जिसका असर हमारी ज़िन्दगी पर पड़ने लगा है। कवि मदन कश्यप कहते हैं–

''कहॉ है पृथ्वी

कहॉ हैं वे खुली दिशायें

जिनमें दूर बहुत दूर तक

अपनी हरी–हरी दूब से

आसमान को सहलाती हुई दिखती थी पृथ्वी

कहॉ है पृथ्वी।''[10]

विकास के नाम पर पेड़ काटे जा रहे हैं, नदी के पानी को दूषित किया जा रहा है, किसानों से खेती छीनकर पूँजीपतियों को दिए जा रहे हैं। कवि ज्ञानेन्द्रपति कहते हैं–

''नदी!

तू इतनी दुबली क्यों है

और मैली–कुचैली

मारी हुई इच्छाओं की तरह मछलियॉ क्यों उतरायी हैं

तुम्हारे दुर्दिनों के दुर्जल में''[11]

4.3 **सहिष्णुता**

भारतीय संस्कृति एक महानदी के समान है जिसके रूपायन में कई छोटी–मोटी धाराओं की भूमिका रही है। भारतीय संस्कृति की मूल शक्ति अंतरावलम्बन में है। भारतीय संस्कृति का स्वरूप बहुसामुदायिक है।यह

अनेक धर्मों, जातियों व भाषाओं की संगमभूमि है। अतः यहॉ धार्मिक समभाव हमेशा रहा है। भारतीय संस्कृति की मूल प्रकृति धर्म निरपेक्ष रही है। परंतु सांप्रदायिक शक्तियॉ अपने स्वार्थ लाभ के लिए भारतीय समाज को धर्म एवं जाति के नाम पर बॉट रही हैं। असहिष्णुता पैदा कर रही हैं। कवि कुमार अम्बुज कहते हैं–

''धीरे–धीरे क्षमाभाव समाप्त हो जाएगा

प्रेम की आकांक्षा तो होगी मगर ज़रूरत न रह जाएगी

.....

आएगी क्रूरता और आहत नहीं करेगी अमारी आत्मा को

फिर वह चेहरे पर भी दिखेगी

लेकिन अलग से पहचानी न जाएगी

.....

और सोख लेगी हमारी सारी करुणा

हमारा सारा श्रृंगार''[12]

सह–अस्तित्व इस संस्कृति की जीवन–पद्धति में सर्वत्र व्याप्त है। परन्तु सांप्रदायिक शक्तियॉ इस मूल्य को खोखला बना रही हैं। वे जनता को एक दूसरे के खिलाफ भड़का रही हैं। अपने राजनीतिक लाभ को साधने के लिए दंगा करा रही हैं। समकालीन कवि इन सब के प्रति जागरूक हैं।

4.4 **लोकतांत्रिक भावना**

भारत की संस्कृति लोकतांत्रिक रही है। यहॉ हर धर्म, जाति एवं भाषा के लिए समभाव रहा है। यहॉ हर व्यक्ति अपने विचार की अभिव्यक्ति कर सकता है। परंतु बाज़ारवादी व्यवस्था भारतीय समाज में सदियों से मौजूद लोकतांत्रिक भावना को खोखला बना रही है। समकालीन भारत में हिंसा और राजनीति का रिश्ता और अधिक गहरा हो गया है। वह रिश्ता लगभग संस्थाबद्ध रूप ले चुका है। इसका सबसे दुखद परिणाम यह है कि सामान्य जन इस गिरोह को अपनी ऑखों के सामने पाने के बावजूद उसे एक जानी–पहचानी वास्तविकता मानकर चुपचाप स्वीकार कर लेता है। यह एक चिंताजनक स्थिति हैं इसने सांप्रदायिक शक्तियों को भी बढ़ावा दिया है। यह वास्तव में लोकतांत्रिक मूल्यों की गिरावट है। ऐसी स्थिति में समकालीन कविता का यह उत्तरदायित्व है कि वह जन–विरोधी तत्वों के खिलाफ मोर्चा संभाले। इस प्रक्रिया में समकालीन कवियों ने आम आदमी के संघर्ष को अपनी कविताओं में दर्ज किया है। कवि राजेश जोशी कहते हैं–

''बच्चे काम पर जा रहे हैं

हमारे समय की सबसे भयानक पंक्ति है यह

भयानक है इसे विवरण की तरह लिखा जाना

लिखा जाना चाहिए इसे सवाल की तरह

काम पर क्यों जा रहे हैं बच्चे?''[13]

आज भारतीय समाज में बहुत सारे स्तरों पर असमानता फैली हुई है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक स्तरों पर आज साधारण लोगों को अपनी मूलभूत अधिकार भी नहीं मिल पा रहा है। लोग अपने अधिकारों से वंचित हैं। समकालीन कवियों ने जनता के हक़ के लिए कवितायें लिखी हैं। लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण से होने वाली भयानक स्थिति से कवि राजेश जोशी हमें रू–ब–रू कराते हैं–

''कटघरे में खड़े कर दिए जायेंगे, जो विरोध में बोलेंगे

जो सच–सच बोलेंगे, मारे जायेंगे

बर्दाश्त नहीं किया जाएगा कि किसी की कमीज़ हो

''उनकी'' कमीज़ से ज्यादा सफेद

कमीज़ पर जिनके दाग नहीं होंगे, मारे जायेंगे''[14]

4.5 **परिवार**

भारतीय संस्कृति में पारिवारिक व्यवस्था का बड़ा महत्व है। भारतीय समाज में परिवार एक बहुत बड़ी भूमिका निभाती है। वह व्यक्ति को बचपन से ही सह अस्तित्व, समभाव, प्रेम, दया, त्याग आदि लोकतांत्रिक मूल्यों को सिखाती है। परन्तु भूमंड़लीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न बाज़ारवादी संस्कृति ने भारतीय समाज की इस बरसों पुरानी व्यवस्था को क्षति पहुॅचाई है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में टूटते परिवार व्यक्ति को खोखला बना रही है। यह

व्यक्ति के बचपन को वर्जना और प्रताड़ना से, जवानी को स्पर्धा और असुरक्षा से तथा बुढ़ापे को एकाकीपन की अर्थहीनता में झोंक रही हैं। बाज़ारवादी संस्कृति से उत्पन्न आर्थिक होड़ का यह परिणाम है कि व्यक्ति अपने परिवार, देश एवं परिवेश से दूर होता जा रहा है। उसमें मौजूद उसकी सांस्कृतिक कड़ियॉ टूट रही है। रिश्तों की अहमियत घटती जा रही है। आज व्यक्ति अपने अलावा कुछ सोच ही नहीं पा रहा है। स्वार्थ की भावना उसकी प्रकृति बनती जा रही है। भारत की संस्कृति इन सब के विपरीत है। वह व्यक्ति में सकारात्मक भावना पैदा करती है। अतः इसका संरक्षण एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व बन गया है। कवि राजेश जोशी कहते हैं–

''इस तरह कभी कोई नहीं लौटा होगा

बचपन के उस पैतृक घर से

वहॉ बाबा थे, दादी थी, मॉ और पिता थे

लड़ते झगड़ते भी साथ–साथ रहते थे सारे भाई बहन

कोई न कोई हर वक्त बना ही रहता था घर में

.....

टूटने के क्रम में टूट चुका है बहुत कुछ, बहुत कुछ

अब इस घर में रहते हैं ईन मीन तीन जन

.....

कम हो रहा है मिलना जुलना

कम हो रही है लोगों की जान पहचान

सुख–दु:ख में भी पहले की तरह इकट्ठे नहीं होते लोग

तार से आ जाती है बधाई और शोक संदेश''[15]

4.6 **स्त्री स्वत्व**

मॉ, बेटी, बहन, पत्नी आदि स्त्री के विभिन्न रूपों तथा उनके संसार का चित्रण समकालीन कवियों ने किया है। भारत की संस्कृति में स्त्री का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। स्त्री को परिवार की रीढ़ की हड्डी मानी जाती है। समकालीन कवियों ने स्त्री के जीवन को, उसके आत्मसंघर्ष को आवाज़ दी है। पुरुष केन्द्रित समाज व्यवस्था के खिलाफ स्त्री की अस्मिता की सही पहचान इन कवियों ने किया है। यह हमारे लोकतांत्रिक समाजव्यवस्था का हिस्सा है जिसकी सदियों बाद सही पहचान हुई है। उदारवादी अर्थ प्रधान समाज में जहॉ नैतिक मूल्य बिकाउ हैं वहॉ स्त्री के स्वप्न–दु:स्वप्न, उसकी छोटी बड़ी इच्छाओं का लगभग अभूतपूर्व अंकन समकालीन कवियों ने किया है। आज की बाज़ारवादी व्यवस्था में स्त्री शोषण का साधन बन रही है। समकालीन कवियों ने स्त्री स्वतंत्रता के पक्ष में रूढ़िवादी परंपरा का विरोध किया है। समाज में उसके अधिकारों के लिए लड़ने का मुहिम छेड़ा है। स्त्री को सजग बनाना इनका लक्ष्य है। स्त्री के संघर्ष को इन कवियों ने बहुत बारीकि से अभिव्यक्त किया है। कवयित्री गगन गिल कहती हैं–

''दफ्तर में लड़कियॉ पास नहीं फटकने देतीं

इच्छाओं को, संभावनाओं को

चाहे लाख बार गुड़गुड़ करे, उधम मचायें

जमकर बैठी रहती हैं वे इच्छाओं के पिटाते पर

सूरज चमकता है उनके दफ्तरों के बाहर

मौसम बदलते हैं उनकी खिड़की से दूर

हवा नहीं छूती उन्हें कितने ही साल

पकते हैं बाल धूप के बिना ही

दफ्तरों में कैद लड़कियों के।''[16]

4.7 **लोक एवं जनजातीय संस्कृति**

भारत की संस्कृति का सबसे प्रबल और विविधोन्मुख रूप उसके लोकएवं जनजातीय संस्कृति का रहा है। यहॉ ईश्वर भी इंसानी रूप में लोगों के बीच रहकर उनके सुख–दुख में शरीक होता हैं। लोक एवं जनजातीय संस्कृति और साहित्य मानवता के, मानवीय संबंधों के, उसके व्यक्ति और समाज के प्रति प्रतिबद्धता के, प्रकृति से उसकी आत्मीय संबंधों के, सामाजिकता के राग अलापता है। यह शोषण, घोर वैयक्तिकता, स्वार्थ और छल के विपरीत है। उसका खण्डन करता है। समकालीन कविता इसी लोक की अभिव्यक्ति है।

इन कवियों ने लोक एवं जनजातीय जीवन के दुर्लभ दृश्यों को अपनी कविताओं में शब्दबद्ध किया है। लोक संस्कृति एवं भाषा के

मिठास को अभिव्यक्ति दी है। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप देहाती परिवेश नष्ट होते जा रहे है। गॉव शहर बनता जा रहा है और मानवीय संबंधों में आत्मीयता, प्रेम तथा संवेदना नष्ट हो रही है।

सोवियत संघ के विघटन से हिन्दी के कवियों में विचारधारात्मक संकट का सामना करना पड़ा। साम्राज्यवाद की पहुॅच दुनिया के हर कोने पर हो गई थी। इसलिए समकालीन कवियों को नये सिरे से विचारधारा को परिभाषित करने और उसमें नये विमर्शों को जोड़कर साधारण जनता के संघर्षों के साथ कदम से कदम मिलाने के लिए अपने को तैयार रखने का उत्तरदायित्व था। इसके साथ ही छद्म प्रगतिशीलता एवं जनपक्षधरता का पर्दाफाश भी करना था। अतः ये कवि निरन्तर संघर्ष की राह पर है। समकालीन कविता भारत की संस्कृति के आधारभूत मूल्यों को, जो लोक एवं जनजातीय सामाजिकता का, हिस्सा है जिसके मूल तत्वों से भारत की संस्कृति का स्वरूप बना है, इसकी ढाल बनना समकालीन कविता का ध्येय है। यह मानवीय संवेदना को बचाए रखने के प्रयास में है। समकालीन कविता ने – ''समाज के हाशियों पर निवास करने वाली संवेदनाओं और सभ्यता की तथाकथित मुख्य भूमि के विडंबनपूर्ण संबंधों की पड़ताल तथा मूल जीवन तत्वों के आदिवास और आधुनिक बाज़ारी सभ्यता के अधिवास के जटिल संबंधों की रचना की है। उनका ऐतिहासिक महत्व यह है कि वे हमारे समाज और व्यापक राजनीति का सबसे बड़ा और अनिवार्य विमर्श बनाती है। अन्याय, क्रूरता, घृणा और असत्य के जटिल लीलालोक को चीरती ये कविताएं उस जीवन की कामना करती हैं जो ज़्यादा सरल, मानवीय और सच हो।''[17]

इनमें लोक एवं जनजातीय संवेदना का विस्तार पाया जाता है। बदलती सामाजिक परिस्थिति में कवियों ने इंसान के व्यक्तिगत एवं जातीय स्मृतियों की झॉकि प्रस्तुत कर बाज़ार के कुतंत्र से बिगड़ते मानवीय मूल्यों को बचाने की कोशिश की है। कवि मदन कश्यप कहते हैं–

''नहीं भूलती है

जेठ की पहली बारिश के बाद

अकुलायी धरती से उठने वाली

बह सोंधी–सोंधी सी गंध

नदियों, पहाड़ों, और जंगलों को पार करते हुए

जाने कैसे चली आती है मुझ तक

और खिच्चे दानों में भरते दूध की तरह

मेरी आत्मा में भरती चली जाती है।''[18]

लोक एवं जनजातीय चेतना को शब्दबद्ध करती ये कविताएँ आधुनिक समाज के कैंवास से मिटते मानवीय मूल्यों को उजागर करने का प्रयास करती हैं। भारत की संस्कृति अपने मूल में देहाती है। उसका प्रकृति से गहरा संबंध है। इन्हीं तत्वों को समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं के ज़रिए समाज तक पहुॅचाने का प्रयास किया है। आर्थिक तंगी देश के निम्न वर्ग पर कठोराघात किया है। किसान मज़दूर बन शहरों की ओर चल पड़े। शहरों में बस रहे इन्हीं मध्य एवं निम्न वर्ग के

लिए अपना गॉव, परिवार, प्रकृति एवं रिश्ते नाते केवल खयालों में ही बचे रह गए हैं। कवि स्वप्निल श्रीवास्तव कहते हैं–

''दिल्ली बम्बई भोपाल की यात्राऍ

करते हुए मैंने पुरबियों को देखा है

मैली कुचैली कठरी की तरह

रेल की सीट या फर्श पर

एक जगह बटुरे हुए भकुआये

गॉव–गढ़ी की बातें करते हैं

मेहरारू के हाथ की पोयी हुई रोटी में

देखते हुए अपना खेत खलिहान

मॉ–बाप की याद में

ढ़कर–ढ़कर रोते हुए

अक्सर मुझे अपना ही चेहरा

याद आता है

याद आती है अपनी ही ऑख।''[19]

हमारी जनसंस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष उसकी मानव एवं पर्यावरणधर्मिता है। यह संस्कृति मनुष्य और प्रकृति के बीच के सामंजस्य के हजारों साल पुरानी नींव पर खड़ी है और इसमें हम सबकी सम्मिलित

आकांक्षाओं का समावेश है। यही कारण रहा है कि अब तक यह उपनिवेशी शक्तियों के हमले से पूरी तरह नष्ट नहीं हुआ है। उसकी इस निरंतर लड़ाई को समकालीन कविता ने आवाज़ दी है।

4.8 अपसंस्कृति के खिलाफ

भारत की संस्कृति की व्यापकता एवं भिन्नता, उसके स्वरूप निर्धारण में सहायक सिद्ध होती है। इसी वैविध्य के रहते, इसमें रूढ़ीवादी तत्व अपनी पैठ जमा नहीं पाती और यही भारत की संस्कृति का मुख्य आधार है। वह खण्डित एवं मुक्त है। उसकी आत्मा लोक जीवन में बसती है जो किसी भी तरह की संस्थागत धार्मिक ढांचे को नकारती हैं परन्तु भूमंडलीकरण से उत्पन्न बाज़ारवाद एवं सांप्रदायिक शक्तियों के उभार ने इसके अस्तित्व पर प्रहार किया है। इस संकट की स्थिति में समकालीन कविता एक ऐसी अभिव्यक्ति बनकर सामने आई है जो इसकी विविधता को, इसके लोक पक्ष को, इसके लोकतांत्रिक स्वभाव को अभिव्यक्त करने का साहस उठाया है।

समकालीन कविता का मूल्य बोध भारत के समाज और संस्कृति का मूल्य बोध हैं। सांस्कृतिक संकट के इस समय में यह ध्यातव्य है कि – ''विभिन्न संस्कृतियों के विकास में भिन्नता के कारण विभिन्न वस्तुओं के प्रति उनकी भावना में भिन्नता है। इनमें प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति की संभावना के सीमाहीन होने के कारण, यह संभावना बनती है कि विवादों को अतिरंजित करके विखलाया जाए और जिसमें दूसरे समूह या आराध्यदेव को अत्यधिक निकृष्ट बताया जाए और अपने समूह या राष्ट्र को सर्वश्रेष्ठ बताया जाए। दूसरी यह कि उपभोक्तावादी संस्कृति

को सर्वश्रेष्ठ मानकर बाकी दुनिया पर इसे आरोपित किया जा रहा है।''[20] इस प्रक्रिया में संस्कृतियों की विविधता लुप्त होगी या वह भ्रष्ट हो जाएगी जिससे अपसंस्कृति का निर्माण होगा। इस सांस्कृतिक आधिपत्य से आत्मनिर्भरता नष्ट होती है एवं मूल्यच्युति होती है। ''पश्चिम की मौजूदा संस्कृति में साम्राज्यवादी तत्व हैं जो कला, साहित्य, संगीत और जीवन के अन्य क्षेत्रों से भारतीय परंपराओं को निष्कासित कर उन पर हावी हो रही है। यह संस्कृति बाज़ार की ज़रूरतों के अनुसार विकसित हुई है और विज्ञापन और प्रतिस्पर्धा इसका मूलतत्व है।''[21]

अतः इस संदर्भ में समकालीन कविता वैज्ञानिक समझ और संवेदना को साथ–साथ लिए संकट की इस स्थिति से जूझती है। वह मृत्यु की पहचान तो कराती है पर उसे नियति नहीं मानती। वह जीवन को उसकी विविधता में देखने का प्रयास करती है। कवि स्वप्निल श्रीवास्तव कहते हैं–

''यह ढ़िबरी नहीं

अंधेरे के पहाड़ को काटती हुई

कुल्हाड़ी है

ताख पर नहीं घर के कंधे पर

जतन से रखी हुई है

जिस दिन शुरू हुआ था

यह घर

उस दिन से गरीबी और अंधेरे के

खिलाफ जल रही है।''[22]

और एक जगह कवि स्वप्निल श्रीवास्तव अपसंस्कृति के खिलाफ भारतीय संस्कृति की आशावादी दृष्टिकोण को उजागर करते हैं–

''वसंत शुरू होता है

हम फूलों के बारे में

सोचते हैं

जिनके रंग आग की तरह

सुर्ख होते हैं

हम देखते हैं

मौसम के समस्त विरोधों के

बवजूद उनका खिलना।''[23]

इसलिए इन कवियों ने भारतीय परंपरा में पुराने समय से चले आ रहे साधारण जनता की भाषा एवं शब्दों का प्रयोग किया है क्योंकि भाषा एवं शब्द संस्कृति का हिस्सा है और यहीं से समकालीन कविता ने संघर्ष की ऊर्जा पाई है। रचनात्मक कार्रवाई का मूल चरित्र हत्या और आत्महत्या का विरोधी है। इसके मूल्य फासिस्ट मनोवृत्ति से अलग है। किसी भी संस्कृति पर आक्रमण से उसका पहला असर उसकी भाषा पर पड़ता है। भाषा किसी भी संस्कृति के तत्वों का वाहक होता है।

नवउदारवादी शक्तियों का प्रयास भाषा और विचारों को भूमंडलीय अर्थव्यवस्था के अनुरूप बनाना तथा उनमें विद्वेष, युद्ध की भावना, स्वार्थ, आदि को पैदा करना होता है। अतः समकालीन कविता इन तत्वों को समाज के सामने प्रस्तुत करती है और इनसे अलग एक अच्छा विकल्प ढूँढ निकालने का प्रयास कर रही है। कवि भगवत रावत कहते हैं–

''मुझे एक भाषा चाहिए

उसके लिए

नहीं–नहीं

उसकी ऑखों के लिए

जो उसकी ऑख को ऑख कहे

और जिसका अर्थ

सिर्फ ऑख हो।''[24]

4.9 **अहिंसा**

भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण मूल्य है– अहिंसा। हमारे राष्टपिता महात्मा गॉधी जी ने भारत की स्वतंत्रता संग्राम में अहिंसा के सहारे पूरे विश्व को शांति का संदेश दिया। अहिंसा का मूल भाव एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य को मन, वचन और कर्म से हानि न पहूँचाना है। यह मूल्य भारत की संस्कृति के मूलभूत मूल्यों में से एक है। समकालीन कलुषित समय में इसकी महत्ता और बढ़ गई है। समकालीन कविता ने साम्राज्यवादी शक्तियों की युद्ध–प्रियता के खिलाफ अहिंसा के मूल्य को

अपनी कविता में शामिल कर मानव समूह को हिंसा के खिलाफ एक प्रतिरोध का विकल्प दिया है। कवि ज्ञानेन्द्रपति कहते हैं–

''एक शक्तिशाली राष्ट के सिरमौर !

तुम्हारी उल्लासित कल्पनाओं में

पृथ्वी तुम्हारी उँगलियों पर नाचता क्रिडा–कंदुक

–ठीक वैसा जैसा 'दी ग्रेट डिक्टेटर' में

चैप्लिन ने दिखाया था

तुम उसे राष्ट की शक्ति–साधना कहते हो

.....

मैं एक कवि

पृथ्वी–सूक्त के रचयिता का वंशज

.....

नहीं तुम्हारा मर्म कॅपाउँ, नहीं तुम्हारा हृदय दुखउ–गानेवाले कवि का वंशज

.....

पृथ्वी पर चलकर, उसे रौंदने के लिए

क्षमा मॉगनेवाले विनतमाथ कवि का उन्नतभाल वंशज !''[25]

4.10 **विश्वशांति, विश्वबंधुत्व एवं लोकमंगल**

ये भारतीय संस्कृति के महान संदेश हैं। भारतीय संस्कृति ने विश्व को एक कुटुम्ब के रूप में लेकर उसमें बसने वाली सभी प्राणियों व वनस्पतियों का कल्याण की कामना की है। 'खुद जियो और औरों को भी जीने दो' वाली विचार प्रणाली भारतीय संस्कृति ने स्वीकारा है।दूसरों की भलाई इसका लक्ष्य है। दूसरों को सहायता प्रदान करना भारतीय संस्कृति का मुख्य ध्येय है। ये मूल्य भारतीय संस्कृति के तहत उत्तम माना जाता है और यही संस्कृति की आधारशिला है।भारत की संस्कृति प्राप्त संपत्ति को त्यागपूर्वक उपभोग करना तथा दूसरों की धनसंपत्ति की लिप्सा नहीं करना सिखाती है। भारतीय संस्कृति उदार एवं समन्वयकारी दृष्टिकोण को मानने वाली संस्कृति है। इसी भावना ने 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना को पैदा किया, इसी ने भारतीय संस्कृति में लचीलापन और सहनशक्ति को पैदा किया। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' पश्चिम के भूमंडलीकरण का एक बेहत्तर विकल्प है। कवि ज्ञानेन्द्रपति विश्वबंधुत्व और विश्वकल्याण की भावना के विरुद्ध जन साधारण पर हो रहे अत्याचार एवं शोषण के खिलाफ अपनी कविता में प्रतिक्रिया दर्ज करते हैं। वे कहते हैं–

''लेकिन मैं जानता हूँ

पाषाण युग से भी पीछे

हैं वे पाषाण–हृदय, जो

अत्याधुनिकों में अग्रगामी गिनते हैं खुद को

उनको मानव होना शेष अभी।''[26]

4.11 **स्वदेशीकरण का आग्रह**

भूमंडलीकरण के फलस्वरूप विश्वभर की संस्कृति का कई स्तर पर आदान–प्रदान होता है। इसके परिणामस्वरूप सकारात्मक एवं नकारात्मक विचार भी शामिल होते हैं। भारतीय संस्कृति गुणग्राहक संस्कृति है। परंतु नवउपनिवेशी शक्तियॉ भारत के समाज और संस्कृति को अपने स्वार्थ लाभ के लिए प्रयुक्त कर रही हैं। नवउपनिवेशी शक्तियॉ अप्रत्यक्ष रूप से देश की जनता के लिए संकट बन रही हैं। वह लोगों के मन में नकारात्मक प्रभाव ला रही हैं। अतः कवियों को अधिक जागरूक होने का समय है। भ्रष्टाचार, शोषण आदि से जनता का मन पहले से मूल्यों व नैतिकता से हट गया था। 1980 के बाद की समकालीन कविता का मुख्य ध्येय प्रतिरोध का है। वह नष्ट हो रहे मूल्यों व नैतिकता को बचाए रखने में जुटा है। वह भारत की संस्कृति के मूल तत्वों को बचाए रखना चाहती है। इसके लिए वह व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसका परिवार, उसके संस्कार आदि की पड़ताल करता हैजिसे इंसान ने अपने स्वार्थ और प्रगति के मार्फत पीछे छोड़ दिया है। अपने मूल की तरफ वापसी को यह कविताएं दिखाती हैं। ''आठवें दशक में लोक का खुरदुरा जीवन, जनजातीय मिथकों के साथ विश्वसनीय व्यवहार, लोक और आधुनिकता के द्वन्द्व के साथ विस्थापन की पीड़ा का अलग चेहरा था।''[27]भारत की संस्कृति शुरु से जनवादी एवं लोकतांत्रिक रही है। इसने रूढ़ परंपरा को तोड़ मरोड़कर उसे जन सामान्य एवं लोकप्रिय संस्कृति का हिस्सा बनाया है। चाहे वह सामाजिक हो, धार्मिक हो या भाषागत हो, सर्वजन ग्राह्य बनाया है।

आज नवऔपनिवेशिक शक्तियॉ हमारे दिल–ओ–दिमाग में ज़हर घोल रही हैं। भारत की संस्कृति को अपसंस्कृति बना रही है। अतः समकालीन कवियों ने राजनीतिक विषयों से हटकर लोक जीवन, प्रकृति बोध, रागात्मक संवेदना, घर परिवार, समाज के आत्मीय विवरण, युगबोध, सत्ता के उत्पीड़न जैसे विषयक रचनाएॅ करने लगे।नवउपनिवेशी शक्तियों के छल का पर्दाफाश करना कवि का मुख्य लक्ष्य बन गया। कवि राजेश जोशी कहते हैं–

''जब तक मैं एक अपील लिखता हूॅ

आग लग चुकी होती है सारे शहर में

हिज्जे ठीक करता हूॅ जब तक अपील के

कफ्र्यू का ऐलान करती घूमने लगती है गाडी

अपील छपने जाती है जब तक प्रेस में

दुकानें जल चुकी होती है

मारे जा चुके होते हैं लोग''[28]

नवउपनिवेशी शक्तियॉ व उनके द्वारा रचित उपभोक्तावादी संस्कृति भारत की जनसंस्कृति का दमन कर, उनको नष्ट करने का प्रयास कर रही हैं। यह वह जनसंस्कृतियॉ हैं जो कई सदियों तक अपनी अस्मिता को कायम रखा है। कवि उदय प्रकाश कहते हैं–

''इस समय

जब कि कोई भी वाक्य पहले का अर्थ नहीं देता

मैं कहना चाहता हूँ

'मैं घर जाना चाहता हूँ'

.....

इस समय

जब कि 'घर' का वह अर्थ नहीं रहा

जब कि मैं बूढ़ा हो रहा हूँ

जब कि शीशम के पेड़ नहीं रहे और

सरौतियां और पहले वाली बूढ़िया नहीं रहीं

इस समय

जब कि बच्चे लालटेन के चित्र किताबों में देख रहे हैं।''[29]

4.12 **मूल्य संक्रमण**

सांस्कृतिक अस्मिता किसी भी देश की पूँजी है। हर एक देश की अपनी संस्कृति होती है। भारत दुनिया का एकमात्र ऐसा देश है जहाँ अनेक संस्कृतियाँ मौजूद हैं। परन्तु इन विभिन्न संस्कृतियों को एक धागे में पिरोने वाली कुछ ऐसी सामान्य विशेषताएँ हैं जो भारत को विविधता में

एकता का दर्जा देती हैं। भारत की सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखना ही यहॉ के रचनाकारों का प्रयास रहा है। सांस्कृतिक अस्मिता किसी भी देश की पहचान है। वहॉ की जनता के रहन–सहन, कार्य व्यापार, सामाजिकता आदि घटक इसका निर्धारण करती है। समकालीन कविता ने भारत के लोक व अंचल की भाषा, बोली, संगीत आदि को सुरक्षित रखने के पूरे प्रयास में है। भारत की संस्कृति की विशेषताएँ जैसे गत्यात्मकता, प्रगतिशीलता, समन्वयशीलता, सहअस्तित्व, धर्मनिरपेक्षता, अहिंसा, परिवर्तनशीलता आदि गुणों को बनाए रखना आवश्यक है। यही उसकी सबसे बड़ी विशेषता है तथा यही भारतीय समाज को विश्व के अन्य समाज से पृथक करती है। समकालीन कविता इसके लिए निरंतर संघर्ष कर रही है।

समकालीन बाज़ारवादी समाज व्यवस्था मनुष्य का मनुष्य से तथा मनुष्य का प्रकृति से आत्मिक संबंध को विकृत कर रही है। संयुक्त परिवार के टूटने से प्रत्येक व्यक्ति बहुत अधिक आत्मकेन्द्रित रहने लगा। स्वार्थ की भावना आम स्वभाव का हिस्सा बन गई। समाज में अर्थ को सब मूल्यों से बढ़कर समझने लगा। भ्रष्ट राजनीति के परिणामस्वरूप आम जनता का शोषण कर भ्रष्ट नेताओं ने अपनी जेबें काले धन से भर लिया। जनता को वोट बैंक में तब्दील करने के लिए जाति एवं धर्म के नाम पर विभक्त किया। देश में शोषण, बेरोज़गारी, आदि पनपने लगी। इसलिए समकालीन कवियों का समाज के प्रति उत्तरदायित्व और बढ़ गया। उन्हें भारतीय संस्कृति के सकारात्मक पक्षों को बचाए रखना था। अतः उन्होंने अपनी कविताओं के ज़रिए इस साम्राज्यवादी शोषण तंत्र का सामना किया। कवि चंद्रकांत देवताले कहते हैं –

''मैं जी रहा हूँ मौत के खबरों के भीतर

चल रहा हूँ हत्यारे हिंसक समय में

फिर मरने का अफसोस क्यों होगा मुझे

मुझे याद है दिया–बत्ती के वक्त

मॉ के साथ प्रार्थना के लिए खड़ा हो जाता था

अब उसी वक्त घरों में भून दिया जाता है

औरतों और बच्चों को।''[30]

सांप्रदायिकता भारतीय समाज का अभिशाप है। यह भारतीय धर्म–निरपेक्ष मूल्यों के खिलाफ है। सांप्रदायिक शक्तियॉ इस समाजवादी भारतीय समाज को बांटने का प्रयास कर रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी यहॉ की सरकार जाति प्रथा को जड़ से उखाड़ नहीं पाई। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू जैसे नेताओं ने सांप्रदायिकता का घोर विरोध किया है। वे धर्म एवं जाति को शासन प्रणाली और राजनीति से पृथक रखना चाहते थे। परन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् भी सांप्रदायिक शक्तियॉ क्षीण नहीं हुई। वह और अधिक बलवान होती गई। समकालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में सांप्रदायिकता एक बड़ी चुनौती के रूप में विद्यमान है। इसके साथ, भ्रष्टाचार, शोषण आदि ने साधारण जन की स्थिति को बदत्तर बनाया है।

1980 के बाद की हिन्दी कविता में सांस्कृतिक संवाद कई रूपों में हुआ है। धर्मनिरपेक्षता, जातीय अस्मिता का प्रश्न, शहर और गॉव की

मानसिकता का अंकन, आदि। इन सब का मुख्य आधार था – अपने मूल की तरफ लौटना। शोषण, हिंसा और नफरत के बीच इंसानियत को बचाए रखना। इंसान की नैतिकता को जगाना और उसे इस अपसंस्कृति से बचाना।

कविता हमेशा से व्यवस्था विरोधी रही है। वह व्यवस्था जो आम आदमी को कठघरे में खड़ा करती है, उसके आवाज़ को दबाती है। आज कोई भी व्यवस्था बाज़ार नियंत्रित है। वह मनुष्य की संवेदना को, उसकी आकांक्षाओं को, उसकी भाषा को एकरूपता देने की कोशिश कर रहा है। उसे भ्रष्ट बनाकर अपना गुलाम बनाना चाहती है। समकालीन कविता इस मूल्यच्युति के खिलाफ प्रतिरोध का दूसरा नाम है। समकालीन कविता ''रचना–विरोधी सत्तातंत्र के बरक्स उसका मूल काम, उसके जीवन को बचाये रखना है। मनुष्य पर जितने भी भौतिक–सांस्कृतिक–मानसिक और आत्मिक आक्रमण है, उन्हें झेलते हुए उनका प्रतिरोध करते रहना उसकी अंतर्निहित शर्त है।''[31] अतः समाज के प्रति कवि और कविता का उत्तरदायित्व बहुत बड़ा होता है।

4.13 **बाज़ारवाद का प्रतिरोध**

समकालीन कविता हाशिएकृत जनविभाग का स्वर है। वह मनुष्य और प्रकृति के खिलाफ हो रही बाज़ारवादी षड्यंत्र के खिलाफ एक प्रतिरोध है। वह पीड़ित एवं शोषित वर्गों की उदासीन एवं करुणा भरी दुनिया से आगे निकलकर उन्हें शोषण के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान करता है। यह आम लोगों के जीवन में व्याप्त अनिश्चय और संदेह से भरे समय में पराजित एवं हताश सच और झूठ के इशारे पर नाच रही

दुनिया का चित्रण करती है। यह झूठ पूंजीवादी आश्वासनों का है। बाज़ार के विश्वासघात का है। भूमण्डलीकरण की आड़ में चल रही हरकतों का है। कवि इस बदलती परिस्थिति से अच्छी तरह वाकिफ हैं। वे इन सब के बीच सपना देखते हैं। एक ऐसा सपना जहॉ मनुष्य को मनुष्य की तरह देखा जाए तथा उसके आत्मिक संबंधों को उसी सच्चाई से ग्रहण किया जाए। क्रूरता और अमानवीयता के ऐन बीच वह भले ही वक्त और भाषा से परे जीवन की हलचल अनुभव करते हैं; मगर करते अवश्य हैं और यही वह आशालोक है जिसमें रहते हुए वे प्रेम के अप्रतिम आवेग को अनुभव करते हैं। समकालीन कवि उपभोक्तावादी संस्कृति के नकारात्मक प्रभाव से पाठकों को आगाह करते हैं। वे पूॅजीवादी व शासक वर्ग के बीच के नाजायज़ संबंध का पर्दाफाश करते हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति अपसंस्कृति का निर्माण कर रही है जो व्यक्ति को समाज से दूर अधिक स्वार्थी बनाता है। बाज़ार के इस अवमूल्यन के खिलाफ समकालीन कवि प्रतिरोध खडा करते हैं। कवि कुमार विकल कहते हैं–

''आप मेरे खिलाफ साजिश करेंगे तो मेरा क्या कर लेंगे?

इस सफर पर निकलने से पहले

मैंने अपना स्वप्न घर

ऑखों से निकालकर

अपनी हथेली पर धर किया था

और एक फैसला कर लिया था

कि मेरे पास खोने के लिए सिर्फ एक उनींदी दुनिया है

जबकि आपके पास नींद है

नींद के महल हैं

सुरक्षा की ज़ंज़ीरें हैं।''[32]

समकालीन कविता ने सबसे पहले जिस विचार को जीवन से जोड़ा वह विचार था गरीब, मज़दूर, किसान, दलित, स्त्री, आदिवासी के सुख–दुख से जुड़ना। यह समाज के वह लोग हैं जो हाशिए पर हैं। भ्रष्ट राजनेता, सूदखोर, पूँजीपति इनका शोषण करते हैं। इन शोषित व पीड़ित जनों की आवाज़ को ही समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में मुख्य रूप से दर्ज किया है। बज़ारवादी संस्कृति के फलस्वरूप शहरी सभ्यता के ताम–झाम में फंसे मध्यवर्ग के आत्मबोध को उसकी मिट्टी से जोड़ने का प्रयास इन कवियों ने किया है। समकालीन कविता संघर्षरत इंसान का प्रतिबिम्ब है। उसकी आत्मीयता को हमेशा जगाकर रखने के लिए यह कविता हमेशा संलग्न है।कवि अरुण कमल कहते हैं–

''बिल्कुल निहत्था पर हाथ बिना ऊपर उठाये

मैं हत्यारों से मिलने जाना चाहता हूँ

लाल मखमल की खाली म्यान लिये

आबनूस की नक्कासीदार बेंट लिये–

जिस तलवार ने सैकड़ों कत्ल किये

उस पर भी कितनी सुन्दर नक्काशी थी–

केवल शब्दों का फाहा लिये

जाना चाहता हूँ, उसकी तरफ से

जो सबसे कमजोर है''[33]

''वह भूमंडलीयता के विरुद्ध ठोसअनुभव प्रसंगों को उभारती है और सांप्रदायिकता के विरुद्ध मानवीय संवेदना को उभारती है। वह आशावादी भले न हो, पर आलोचनात्मक है और यह आलोचना उसके जनतांत्रिक विवेक का सूचक है। वह पूर्ववर्ती परंपराओं के प्रति ग्रहणशील है और समसामायिक जीवन पर पड़ने वाले वैश्विक दबावों के प्रति संवेदनशील है। इसलिए वह तीसरी दुनिया के प्रतिरोध–साहित्य का मूल्यवान अंश है।''[34] समकालीन कविता इंसान को शोषण के विरुद्ध आत्म–चेतन बनाने के संघर्ष में है। वह आम जनता के पक्ष में लड़ना चाहती है जो सालों से न्याय की रोशनी को तलाश रही है।

देश का रुख अधिक पूँजीवादी देशों की ओर हो रहा है। भारतीय समाज इस बदलती नीति का शिकार हो रहा था। व्यवस्था विरोधी शक्तियॉ क्षीण हो रही है। समाज धर्म एवं जाति के नाम पर खण्डित हो रहा है। किसान, मज़दूर, आदिवासी हाशिए पर चले गए। किसान आत्महत्याएं बढ़ने लगी, आदिवासी अपनी भूमि को छोड़ शहरों में मज़दूरी करने के लिए बाध्य हो गए। विकास के नाम पर बड़ी संख्या में किसान, आदिवासी जनों को विस्थापन की समस्या झेलनी पड़ रही है। प्राकृतिक संपदा की लूट मची हुई है। नवउपनिवेशवाद का प्रभाव समाज के हर

स्तर पर पड़ने लगा। हर चीज़ का मूल्य निर्धारण आर्थिक तौर पर होने लगा। इसने एक उपभोगवादी संस्कृति का निर्माण किया। बाज़ार आदमी के शोषण का ज़रिया बन गया। कवि स्वप्निल श्रीवास्तव कहते हैं–

''हमारे समय में धीरे धीरे

गायब हो रही है बेचैनी

गुस्सा भी कम आता है

.....

शरीर में अनुपस्थित रहती है

आत्मा

क्या हमने चाहा था ऐसा जीवन?

जिसमें हो बाज़ार की गंध

और झूठ को सच की तरह

गाये जाने की कोशिश

.....

मौत का कहीं नहीं होता

उल्लेख।''[35]

समकालीन कविता अपने विकास क्रम में हमेशा सामान्य जन के संघर्ष के साथ रहा है और आज भी उसकी यात्रा निरंतर चलती जा रही

है। भारत की संस्कृति के स्वरूप को कविताओं में चित्रित एवं आत्मसात करने के लक्ष्य से कवयों ने भारत के लोक पक्ष को महत्व दिया है क्योंकि भूमंडलीकरण के फलस्वरूप नवसाम्राज्यवादी शक्तियों के शोषण तंत्र एवं विघटनवादी सांप्रदायिक शक्तियों के मानव विरोधी कार्रवाई के विरुद्ध उन्हें प्रतिरोध का दीवार खड़ा करना था। समकालीन कविता का संघर्ष जन सामान्य का संघर्ष है। वह बाज़ार के यथार्थ को खोलकर रखती है। कवि मंगलेश डबराल कहते हैं–

''जो लोग सिर्फ सहमी–सी आंखों से देखते रहते हैं

वे भी जानते हैं कि यहां रखी चीज़ों का कोई विकल्प नहीं है

फ़र्क सिर्फ यह है कि जो कुछ आम तौर पर

जिस तरह दिखता है वह उस तरह नहीं होता

यह बाज़ार का एक ठोस अध्यात्मिक आधार है

इसीलिए चमत्कारों का उत्पादन सबसे बड़ा व्यापार है।''[36]

भारत की संस्कृति उसके वैविध्य के लिए मशहूर है। इसकी विविधता जाति एवं धर्म से लेकर प्रत्येक सांस्कृतिक अस्मिता तक फैला है। आधुनिक संदर्भ में उसकी गहराई और बड़ी है। सांस्कृतिक अस्मिता आज और अधिक मुखर हो गई हैं। अतः समकालीन कविता ने इन विविधोन्मुखी जीवन संदर्भों को प्रस्तुत करने का भरपूर प्रयास किया है। इसने साधारण जनता के संघर्ष की चुनौतियों को, छोटे–बड़े मानवीय प्रसंगों को, खण्डित समाज में मूल्य एवं नैतिकता का स्थान, सांस्कृतिक

बोध को, अतीत के राग और वर्तमान की विडम्बना को तथा पूँजीवादी शोषण तंत्र को बारीकी से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।बाज़ार की अहमियत आदमी से बढ़कर हो गई है। कवि अरुण कमल कहते हैं –

''कौन बचा है जिसके आगे

इन हाथों को नहीं पसारा

यह अनाज, जो बदल रक्त में

टहल रहा है तन के कोने कोने

.....

सब उधार का, माँगा–चाहा

नमक–तेल, हींग–हल्दी तक

सब कर्जे का

.....

अपना क्या है इस जीवन में

सब तो लिया उधार

सारा लोहा उन लोगों का

अपनी केवल धार।''[37]

यह समय भूमंडलीकरण का है। बाज़ार और सत्ता के गठबंधन ने शोषण का नया रास्ता खोल दिया। अतः समकालीन कविता अपने को

समाज के विभिन्न स्तरों पर हो रहे संघर्ष के साथ जोड़ रही है। भूमंडलीकरण के फलस्वरूप मानवीय मूल्यों के क्षरण का चित्रण इस समय के कवियों ने किया है। समकालीन कविता, ''प्रतिरोध के परिप्रेक्ष्य में अपने समय, समाज एवं जीवन को देखते हुए इस अत्यन्त मिक्स्ड एवं हाईब्रिड समय में अपने दोस्त और दुश्मन की पहचान के संकट से गुज़रते हुए भी अपनी पैनी दृष्टि से गरीब, मज़लूम, दलितों एवं स्त्रियों के परिवर्तनकारी राजनीति को मज़बूत करती हुई, सतत् रूप से अपनी संवेदनात्मकता का विकास कर रही है।''[38]इन कविताओं में समाज के आर्थिक संबंधों की अपेक्षा व्यक्तिगत संबंधों के प्रति जागरूकता अधिक दिखाई देती है। इन कवियों ने अपनी को ऑचलिक, स्थानीय अथवा जनपदीय भूगोल एवं लोक संवेदना से संपृक्त किया हैं। इन कवियों के लिए अपने जड़ की ओर या लोक की ओर लौटना संकल्प, उम्मीद व स्वप्न की तरह है। समकालीन बाज़ारोन्मुख समाज में आम आदमी के व्यक्तित्व में आने वाले परिवर्तन, उसमें उत्पन्न होने वाली असुरक्षा का भाव एवं उसकी तनावग्रस्तता का चित्रण इस समय के कविताओं में मिलते हैं। आज साधारण आदमी जीवन के हर स्तर पर संघर्षरत हैं। उसके संघर्ष को दिशा देने व इसकी अभिव्यक्ति के रूप में समकालीन कविता हमेशा आगे आई है। सामाजिकता, लोक सजगता और संघर्ष की भावना – ये समकालीन कविता का मुख्य ध्येय हैं।

हमारा राजनीतिक ढॉचा समाज को तेज़ी से ऐसे अंधकार की ओर ले जा रहा है जहॉ सिर्फ ताकत की तूती बोलती है। यह बाज़ारवाद का परिणाम है। अतः कवि का यह दायित्व होता है कि अपनी कविताओं में संवेदनशीलता एवं सच्चाई को बरकरार रखे। भ्रष्ट राजनेता समाज के

उत्पीड़न को सहने की क्षमता की परीक्षा लेती हैं। यह धीरे–धीरे समाज में विकृति, उत्पीड़न और ताकत के आतंक को जज़्ब कराने का प्रयास करता है। यह क्रोध, हिंसा और नफरत को फैला रहे हैं। खून खराबे को सामान्य रूप देने की कोशिश में हैं। सांप्रदायिकता इसी का परिणाम है। अहिंसा जैसे मूल्यों का अनुसरण कर भारत को स्वतंत्रता हासिल हुई, परन्तु इन मूल्यों को हमने कौड़ियों के दाम बेच डाला। यह सांप्रदायिकता व धर्म आधारित राष्ट्रीयता भी उसी नवसाम्राज्यवाद का हिस्सा है। यह संपूर्ण इंसानियत का शत्रु है। कवि यतीन्द्र मिश्र कहते हैं–

''अयोध्या का राजसिंहासन सूना है

कहीं कोई भरत नहीं दिखता

जिसे संकल्पित पादुका की दरकार हो

राम बेहद व्यथित

आज वैसी नहीं रही अयोध्या

मर्यादा की लक्ष्मण रेखा

भक्तों ने ही कर दी पार

सायास

साधिकार

.....

इस युद्धसंधि पर

अयोध्या योद्धाओं की भूमि बनी।''[39]

सरकार बाज़ार संबंधी नीतियों को लागू कर देश की उन्नति का ढोंग रचती है। यह सीमा शुल्कों को कम कर अन्तर्राष्ट्रीय ब्रैण्डों के देश में प्रवेश को संवैधानिक बनाती है। कटौतियों के रद्द किए जाने के पीछे बड़े उद्योगपतियों के निहित स्वार्थ की रक्षा होती है। सरकारी संस्थानों के निजीकरण का वास्तविक उद्देश्य अपने मुनाफे हेतु निजी कंपनियों को कम दाम में बेचकर करोड़ों रूपये हासिल करना होता है। इस झूठ को सच का पोशाक पहनाने में वैश्वीकरण के पैरवीकार अच्छी तरह जानते हैं। इस तरह की परिस्थिति के रहते भारत जैसे बहुभाषी, बहुजातीय, देशों के लोगों का यह शिकार करती है। यह समाज, जाति, भाषा, परिवार एवं व्यक्तियों के बीच दरारें उत्पन्न करती हैं। यह सामाजिक मूल्यों को जर्जर बनाती है। उसे नकारात्मक ढंग से परिवर्तित करती है। यह भारत जैसे विविधोन्मुखी समाज एवं सामाजिक मूल्यों वाले देश के लिए अत्यंत खतरा है। यह एक देश की स्थानीय संस्कृति को खोखला बनाती है। कवि चंद्रकांत देवताले कहते हैं–

''इस साजिश को मैं पहचानता हूँ

अपनी कविता की कपट–बेधी ऑखों से

क्योंकि कपट से कपट के बीच धॅसी हुई यह भाषा

सुख के पहाड़ की चोटी तक पहुँचाती है

हड्डियों को सपना दिखाती है तपती धूप में

एक क्षण बाद

गायब पहाड़

क्षत–विक्षत सपना

जस की तस हड्डियॉ

यह भाषा चुपके–चुपके

आदमी का मॉस खाती है।''[40]

उपभोक्ता बाजार की पहुँच का यह भयावह विस्तार जहॉ एक ओर बाज़ार की पारंपरिक सीमाओं को तोड़कर हर तरफ एक जैसा ब्रैण्ड संस्कृति स्थापित कर रहा है वहीं दूसरी ओर सूचना प्रौद्योगिकी के विकास ने समाज और संस्कृति के पुराने समीकरणों को असंगत बनाना शुरू कर दिया है। 1980 के बाद सूचना जगत में एक ऐसी क्रांति आई कि परंपरागत मान्यताएं एवं सांस्कृतिक ज़रूरतों में भारी बदलाव आया। वैश्वीकरण के कुछ तत्वों ने जगहों की बीच की दूरियां तो कम कर दी परन्तु इंसान की भावना को विभक्त कर दिया। संबंधों में दरारें आ गईं। इसने बहुभाषी व बहुप्रादेशिक परिवेशों में ध्रुवीकरण पैदा किया है। समकालीन कविता ने मनुष्य विरोधी स्थितियों, आम लोगों पर होने वाली यातनाएँ, बाज़ार के छल–छद्म, शोषित लोगों की पीड़ा, जन सामान्य की बेहतर जीवन के प्रति अटूट आस्था आदि का चित्रण बहुत बारीकी से किया है। यह मानव मुक्ति का दस्तावेज़ है। कवि अशोक वाजपेयी कहते हैं–

''वे धीरे–धीरे बिना कुछ कहे

हथिया लेंगे तुम्हारी जगह।

हर लेंगे तुम्हारे वचन,

तुम्हारा सक्तकल्प कर

तुम्हें अपनी अस्थियों के अंधेरे में

चुपचाप छोड़कर

दिव्य निर्मम आभा से दीप्त

वे आगे चले जायेंगे।''[41]

बाज़ार द्वारा आम आदमी के शोषण को यहॉ चित्रित किया गया है। समकालीन कविता अपने समय, समाज, व्यवस्था, राजनीति, विचारधारा, परिवार और व्यक्ति की चेतना में फैले अंधेरे के विभिन्न रूपों की खोज और पहचान हैं।कवि बलदेव वंशी कहते हैं–

''स्तब्ध पुतलियों–सी स्थिर

नीरव हॅसती वारदातों का क्रमः

जलते नगर

उभरते जंगल

सॉसों में बढ़ती

लपटों की आपाधापी

कील ठुंकी ऑखों में समय पढ़ता है

हाथों की भाषा

मैली रेखाओं में डूबती मानव लिपियों का इतिहास

मौन

मुखर।''[42]

4.14 **भाषाई अस्मिता और शैली**

समकालीन कविता की सबसे बड़ी देन यह है कि उसने बाह्य यथार्थ का तिरस्कार करके आत्मगत बोध की ही सत्य मानने वाले भाववाद को अस्वीकार किया है। यह काव्यधारा न केवल यथार्थ के बोध की नई युक्तियॉ विकसित करने में सक्षम हुई है, बल्कि उसने यथार्थ के विभिन्न रूपों और स्तरों को एक साथ काव्य–विषय बनाया है। सूक्ष्म स्तर पर प्रेम की संवेदना और परिवार के रिश्ते से लेकर व्यापक स्तर पर शोषण–सांप्रदायिकता–साम्राज्यवादी हस्तक्षेप तक यथार्थ का इतना बड़ा दायरा काव्य की विषयभूमि में परिवर्तित हुआ है कि एक बार फिर यथार्थ का विस्तार और संवेदना का विस्तार हिन्दी कविता की शक्ति बनकर प्रकट हुआ है। ''1985 के बाद भूमंडलीकरण एक ओर, अर्थनीति में उदारीकरण : दूसरी ओर सांस्कृतिक जीवन में प्रतीकात्मक और नुमाइशी भारतीयता, एक ओर विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से कर्ज लेकर कॅप्यूटर–क्रांति और बाज़ार क्रांति का सूत्रपात करना तथा दूसरी ओर विदेशों में आयोजित संस्कृतिविहीन भारत महोत्सवों की श्रृंखला और रामजन्म भूमि का ताला खोलकर मंदिर–मस्जिद विवाद के द्वारा

सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की भूमिका तैयार करना। दूसरे शब्दों में हमारी राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक एकता को गंभीर संकट में डालने वाली दोनों प्रवृत्तियॉ – भूमंडलीकरण और सांप्रदायिकता – साथ–साथ बढ़ी हैं।''[43]

समाज में फैली अनैतिकता एवं मूल्यहीनता को ये कवि दर्शाते हैं। इस प्रक्रिया में इंसान द्वारा पीछे छोड़ गए उनके आत्मिक संबंधों की रागात्मकता को शब्दों में बांधकर, देहाती जीवन के विरल दृश्यों को पाठकों के सामने लाते हैं। जिसमें मानवीय संबंधों के विभिन्न तलों का चित्रण होता है व अपने परिवेश से उसके नैसर्गिक एकरूपता को दिखाते हैं। समकालीन कविता मानवीय संबंधों का पोषण कर इंसान को अपने मूल से जुड़े रहने और अपनी संस्कृति की सही पहचान करने में उसकी सहायता करता है। कवि लीलाधर मंडलोई कहते हैं–

''सुदूर पश्चिम में फेंका हुआ प्रकाश बिंब

नर्मदा इस दूर दृश्य में ईंगुर से उछाहती

पास कहीं ऑखों में सहसा उभरतीं

मंदिर की पुरानी घंटियॉ सेंदूर में लत–पत

जिसके बेतरतीब नाद घुलते

कहीं दूर गायी जाती रूॅझाती की पवित्रता में''[44]

1980 के बाद की हिन्दी कविता में भाषा एवं शब्द प्रयोग का बड़ा ध्यान दिया गया है। भूमंडलीय बाज़ारवादी शब्दावलियों का त्याग कर मानव की सहज प्रकृति एवं देहाती शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया

है। भारत की संस्कृति उसके लोक में बसा है। अतः समकालीन कविता में लोक जीवन से शब्दों, मुहावरों एवं लोकोक्तियों को ग्रहण किया गया है। भारतीय ग्रामीण परिवेश से उन शब्दों को ग्रहण किया गया है जिसका अस्तित्व आज लगभग मिट गया है। हर कवि को अपने द्वारा अनुभव किए हुए सत्य की अभिव्यक्ति हेतु भाषा की आवश्यकता होती है। भाषा ही एक ऐसा साधन है जो प्रत्येक युग के परिवर्तन, प्रगति, नवीनता, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों और उनके विघटन को दिखाने में समर्थ होता है और शिल्प अनुभूति के कलात्मक प्रकाशन में प्रयुक्त सुनियोजित शब्द समूह है, अर्थात् कवि के भावों के संप्रेषण के लिए जिन उपादानों को ग्रहण किया जाता है, वे शिल्प कहलाते हैं। समकालीन कविता भारत की सांसकृतिक अस्मिता को बचाए रखने हेतु मनुष्य के भावों के चित्रण के लिए देशी शब्दावलियों का अधिक प्रयोग किया है। प्रकृति के हर छोटे–बड़े अंगों को इन कवियों ने अपनी कविता में मनुष्य के साथ, उसकी स्मृतियों में, उसके सहचर के रूप में दिखाया हैं। इनमें स्मृतियों के चिह्न अधिक दिखाई देते हैं।कवि राजेश जोशी कहते हैं–

''पानी की आवाज भी पारदर्शी और तरल लगती थी

बह कर समुद्र की तरफ जाती आवाज़ों में

पहाड़ से उतरकर आने की आवाजें भी शामिल थीं

उसके गिरने में उसके उछलने की आवाज शामिल थी

उसकी कई आवाज़ों में एक आवाज़

उसके छत से टपकने की भी थी

टपके की जगह पर जब कोई बरतन रख दिया जाता था

तो उसमें छन्न

.....

की एक आवाज और जुड़ जाती थी

.....

मॉ की आवाज उसमें बार–बार सुनाई देती थी।''[45]

समकालीन कविता में प्राकृतिक बिम्बों का प्रयोग खूब हुआ है। यह बिम्ब प्रयोग जीवन के सहजगामी क्रियाकलापों के साथ साथ हुआ है। कवि विश्वनाथ प्रसाद तिवारी कहते हैं–

''अभी–अभी तो आया हूॅ

और अभी अभी वसंत भी आया है

इस घाटी में

देखो किरणों में कैसी खिली है

यह सतरंगी घाटी

अभी तो बहुत कुछ कहना चाहता हूॅ

झरने की तरह बहना चाहता हूॅ।''[46]

समकालीन कविता में संवाद एवं संबोधन की शैली का प्रयोग हुआ है तथा इसमें कथात्मक शैली का भी प्रयोग हुआ है। इससे समकालीन

कविताओं में निरन्तर पाठकों से सजीव बातचीत संभव होती है। इससे पूरी कविता में सजीवता आ जाती है। लोक कला हो या लोक गीत इनमें एक कथा होती है जिसमें साधारण इंसानों की सुख दुख को प्राकृतिक उपादानों की सहायता से प्रस्तुत किया जाता है। समकालीन कविता ने इस प्रवृत्ति को आत्मसात कर अपने कलेवर में वैसी ही कथा व संगीत को विशेष स्थान दिया है। वह इंसान की संवेदना को जगाना चाहती है। समकालीन कविता ने संवाद शैली का प्रयोग किया है। कवि प्रयाग शुक्ल कहते हैं–

''क्या वह तुमने बुना था कवि?

हर बार बुनते हो

जब कुछ पकड़ते हो,

या आ जाता

काम हर बार

जाल वह

पुराना ही?''[47]

कवि संवाद आम आदमी से करते हैं। समाज के विकृतियों के खिलाफ उन्हें आगाह करते हैं। कवि विष्णु खरे कहते हैं–

''डॉक्टरों मुझे और सब सलाह दो

सिर्फ यह न कहो कि अपने हार्ट का ख्याल रखें और

गुस्सा न किया करें आप–

क्योंकि गुस्से के कारण आई मृत्यु मुझे स्वीकार्य है

गुस्सा न करने की मौत के बजाए।''[48]

समकालीन कविता में कथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। कवि कुमार अंबुज कहते हैं–

''पिछले कई सालों से मैं बाज़ार नहीं गया था

इधर कुछ पैसा हाथ आया एरिअर्स का

लगातार दो दिनों की छुट्टी आई कई दिनों बाद

तो लगा बाज़ार जाने लायक है तबीयत

एक रोमांच में बाज़ार गया मैं।''[49]

कथात्म शैली का प्रयोग कवियों ने आम आदमी के जीवन साहचर्य को दर्शाने, शोषण एवं अत्याचार का चित्रण करने तथा भूमंडलीकरण के दुष्प्रभाव से मिटती देहाती दुनिया एवं उसमें बसने वाली आत्मीयता को दिखाने के लिए किया है। कवि सुदीप बैनर्जी कहते हैं–

''भोपाल आ बसे हमारे मोहल्ले में

ऐसा वादा नहीं था, इरादा भी नहीं था

इस शहर की रूह है बडा तालाब

भारत भवन के नीचे की सड़क पर

रात–बिरात चीते मिल जाते हैं।''[50]

समकालीन कविता में संबोधन शैली का भी प्रयोग हुआ है। कवि हेमंत कुकरेती कहते हैं–

''तुम्हारी भाषा में लिखा

कोई नाटक नहीं है हम

शब्द हैं जिसे तुम मार नहीं सकते

हर बार लौटे हैं हम ज़िन्दगी के उत्सवों में

जो तुमने बहुत कम रहने दिए हैं।''[51]

समकालीन कविता की भाषा कभी आक्रामक रही है, तो कभी संवेदना को जगाने हेतु स्मृतियों में भटकती सी दिखाई पड़ती है। वह कभी बाज़ार की मार से पीड़ित सर्वहारा एवं किसानों के दुख से दुखी होती है तो कभी जीवन के क्षणों में छोटी–छोटी खुशियों से खुश होती हैं। वह इंसान को आगाह करती है कि संस्कृति के क्षीण होने से कैसे मानवीय संबंधों की आत्मीयता मिटती जा रही है। समकालीन कविता ने बिम्बों के प्रयोग में न सिर्फ देहाती जीवन और प्रकृति के रूपों को लिया है बल्कि, मिथकीय, पौराणिक, व ऐतिहासिक संदर्भों को भी लिया है। समकालीन कविता का प्रतीक विधान भी व्यापक है। कवि पंकज चतुर्वेदी कहते हैं–

''एक ऐसे समय में

जब आकाश में चीलें मंडरा रही हैं

और हर खोह के लिए एक अदृश्य मुनादी है

कि उसमें हाथ डालने वाले इंसान की

खाल खींच ली जाएगी।''[52]

कवि भारत यायावर कहते हैं–

''कौन थे वे लोग?

छाती तक लम्बी रक्त सनी

जीभ लपलपाते

सांसों से बारूदी दुर्गंध छोड़ते

नज़रों में

खंजरों की खूनी चमक लिये

पैरों में लोहे के बूट पहने

कौन थे वे लोग?''[53]

सन् 1980 से 2000 तक कालखण्ड में बहुत सारे उल्लेखनीय कवि एवं उनकी कविताएँ हैं, जैसे – 'हम जो देखते हैं'–मंगलेश डवराल, 'दो पंक्तियों के बीच'–राजेश जोशी, 'पुतली में संसार'–अरुण कमल, 'सब कुछ होना बचा रहेगा'–विनोद कुमार शुक्ल, 'शब्द और शताब्दी'–विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, 'सड़क पर चुपचाप'–प्रभात त्रिपाठी, 'संक्रांत'–कैलाश वाजपेयी, 'तत्पुरूष'–अशोक वाजपेयी, 'पत्थर की बैंच'–चन्द्रकांत देवताले, 'बहने और अन्य कविताएँ'–असद जैदी, 'हुआ

कुछ इस तरह'–भगवत रावत, 'लौटता हूँ उस तक'–आग्नेय, 'यहाँ कहाँ थी छाया'–प्रयाग शुक्ल, 'मगर एक आवाज़'–लीलाधर मंडलोई, 'अनुभव के आकाश में चाँद'–लीलधर जगूड़ी, 'इतना कुछ'–गंगा प्रसाद विमल, 'उनींदे की लोरी'–गिरिधर राठी, 'दासत्व से उबरो'–नरेन्द्र मोहन, 'अभी, बिल्कुल अभी'–केदारनाथ सिंह आदि।

4.15 निष्कर्ष

समकालीन कविता ने हमेशा जन सामान्य के जीवन संघर्ष पर बल दिया है। 1980 के बाद जो बदलाव समकालीन कविता में आया है वह आज भी बरकरार है। यह बदलाव सकारात्मक है और पीड़ित जनों के जीवन के बड़े हिस्से को अपने में संजोया है। 1980 के बाद समकालीन कविता के प्रमुख कवि गण हैं – अरुण कमल, उदय प्रकाश, मदन कश्यप, लीलाधर मंडलोई, मंगलेश डबराल, सुदीप बैनर्जी, स्वप्निल श्रीवास्तव, पंकज चतुर्वेदी, प्रयाग शुक्ल, कात्यायनी, अनामिका, विनोद कुमार शुक्ल, दिनेश कुमार शुक्ल, कैलाश वाजपेयी, जितेन्द्र भाटिया, भारत यायावर, हेमंत कुकरेती, यतीन्द्र मिश्र, एकांत श्रीवास्तव, आग्नेय, राजेश जोशी, ज्ञानेन्द्रपति, विष्णु खरे, कुमार अंबुज, भगवत रावत, असद जैदी, प्रभाव त्रिपाठी, कुमार विकल आदि ।

समकालीन कवियों ने साम्राज्य विरोधी कविताएँ रची हैं। इसने व्यवस्था के शोषण तंत्र को उजागर करने और साधारण जन की पीड़ाओं को चित्रित करने के लिए प्रतीकों को जीवन के हर कोने से लिया है। साधारण से साधारण वस्तुओं व जीवन संदर्भों को भी इस के लिए लिया गया है।

इस भूमंडलीकृत बाज़ारवादी व्यवस्था में समकालीन कविता ने मनुष्य की सामाजिकता और उसकी मानवीयता को बचाने के लिए अपनी भरपूर कोशिश को जारी रखा है। यह भारत की संस्कृति की अस्मिता को बचाने की कोशिश है। यह भारत की सांस्कृतिक अस्मिता और उसके लोक पक्ष को पाठकों के सामने रखते हुए बाजारवादी–विघटनकारी शक्तियों के खिलाफ प्रतिरोध का स्वर मुखरित करते हुए कविता की सामाजिक सार्थकता को बरकरार रखती है, क्योंकि समकालीन कवि यह जानते हैं कि वे चुनौतियों के बीच खड़े हैं, वह उम्मीद और निराशा के बीच खिंची महीन रेखा पर खड़े हैं। अतः उन्हें हर पल संघर्षरत रहना है।

समकालीन कवि हमारी संस्कृति के स्वत्व को बचाये रखना चाहते हैं। हमारे देश की ग्रामीणता, प्रकृति, लोकतांत्रिक भावना, उदार एवं सहिष्णुता पूर्ण दृष्टिकोण, समन्वयात्कता, अहिंसा, धर्म निरपेक्षता, स्त्री के प्रति आदर, लोकचेतना, पारिवारिक गरिमा, स्नेह, साहोदर्य, लोमंगल की कामना आदि सांस्कृतिक विरासत के प्रति कवि चिंतित हैं। जब भी भारतीय मूल्यों के सामने संकट आये हैं उसके खिलाफ सशक्त प्रतिरोध समकालीन कवियों ने खड़ा कर दिया है। वैश्वीकृत युग में होने वाले अपसंस्कृतिकरण का संपूर्ण विरोध करते हुए देश की सांस्कृतिक महिमा एवं गरिमा को कायम रखने का सशक्त आग्रह समकालीन कवियों ने अपनी–अपनी कविताओं के माध्यम से किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एकांत श्रीवास्तव – कविता का आत्मपक्षा, पृ सं –29
2. मंगलेश डबराल – आवाज़ भी एक जगह है, पृ सं –65
3. मदन कश्यप – नीम रोशनी में, पृ सं–26
4. पंकज चतुर्वेदी – एक संपूर्णता के लिए, पृ सं –20
5. विनोद कुमार शुक्ल – सब कुछ होना बचा रहेगा, पृ सं –27
6. अशोक वाजपेयी – घास में दुबका आकाश, पृ सं –24
7. अशोक वाजपेयी – घास में दुबका आकाश, पृ सं –40
8. अशोक वाजपेयी – घास में दुबका आकाश, पृ सं –90
9. विश्वरंजन (संपादन) – कविता के पक्ष में, पृ सं –79
10. मदन कश्यप – नीम रोशनी में, पृ सं–79
11. ज्ञानेन्द्रपति – कवि ने कहा, पृ सं –24
12. कुमार अंबुज – क्रूरता, पृ सं –21,22
13. राजेश जोशी – नेपथ्य में हॅसी, पृ सं –23
14. राजेश जोशी – नेपथ्य में हॅसी, पृ सं –35
15. राजेश जोशी – दो पंक्तियों के बीच, पृ सं –54,55
16. गगन गिल – एक दिन लौटेगी लड़की, पृ सं –24
17. मंगलेश डबराल – कवि का अकेलापन, पृ सं–49
18. मदन कश्यप – नीम रोशनी में, पृ सं–20
19. स्वप्निल श्रीवास्तव – ताख़ पर दियासलाई, पृ सं – 25

20.सच्चिदानंद सिंहा – भूमंडलीकरण की चुनौतियॉ , पृ सं –33,34

21.वही, पृ सं –34

22.स्वप्निल श्रीवास्तव – ताख़ पर दियासलाई, पृ सं –28

23.स्वप्निल श्रीवास्तव – ताख़ पर दियासलाई, पृ सं –58

24.भगवत रावत – निर्वाचित कविताएं, पृ सं –14

25.ज्ञानेन्द्रपति – कवि ने कहा, पृ सं –106

26.ज्ञानेन्द्रपति – कवि ने कहा, पृ सं –105,106

27.लीलाधर मंडलोई – हिन्दी कविता : 1980 के बाद, वागर्थ, पृ सं –16

28.राजेश जोशी –दो पंक्तियों के बीच, पृ सं –95

29.उदय प्रकाश – रात में हारमोनियम, पृ सं – 53

30.चन्द्रकांत देवताले – पत्थर की बैंच, पृ सं –60

31.मंगलेश डबराल – लेखक की रोटी, पृ सं –146

32.कुमार विकल – संपूर्ण कविताऍ, पृ सं –111

33.अजय तिवारी – साहित्य का वर्तमान, पृ सं –22

34.अरुण कमल – नये इलाके में, पृ सं –23

35.स्वप्निल श्रीवास्तव – जिन्दगी का मुकदमा, पृ सं–9,10

36.मंगलेश डबराल – आवाज़ भी एक जगह है, पृ सं –58

37.अरुण कमल – अपनी केवल धार, पृ सं –88

38.लीलाधर मंडलोई – हिन्दी कविता : 1980 के बाद, वागर्थ, पृ सं –35

39.यतीन्द्र मिश्र — अयोध्या तथा अन्य कविताएँ, पृ सं —33,34

40.चन्द्रकांत देवताले — लकड़बग्घा हँस रहा है, पृ सं —13

41.अशोक वाजपेयी — तत्पुरूष, पृ सं —47

42.बलदेव वंशी — उपनगर में वापसी, पृ सं —67

43.अजय तिवारी — साहित्य का वर्तमान, पृ सं —21

44.लीलाधर मंडलोई — मगर एक आवाज, पृ सं —19

45.राजेश जोशी — दो पंक्तियों के बीच, पृ सं —31

46.विश्वनाथ प्रसाद तिवारी — कवि ने कहा, पृ सं —21

47.प्रयाग शुक्ल — यहाँ कहाँ थी छाया, पृ सं —14

48.विष्णु खरे — सब की आवाज के पर्दे में, पृ सं —41

49.कुमार अंबुज — क्रूरता, पृ सं —25

50.सुदीप बैनर्जी — इतने गुमान, पृ सं —36

51.हेमंत कुकरेती — चलने से पहले, पृ सं —32

52.पंकज चतुर्वेदी — एक संपूर्णता के लिए, पृ सं —12

53.भारत यायावर — बेचैनी, पृ सं —19